आमुख

'शिक्षक दिवस' के अवसर पर शिक्षा विभाग द्वारा राज्य के सृजनशील शिक्षक साहित्यकारों की विविध साहित्यिक विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित करने की योजना को हाथ में लिए दस वर्ष हो गए हैं। गत वर्ष तक ३५ पुस्तकें प्रकाशित की गई थीं। इस वर्ष ये पाँच पुस्तकें और आपके सामने हैं:—

१—इस बार (कविता संकलन) सम्पादक—नन्द चतुर्वेदी

२—संकल्प स्वरों के (कविता संकलन) सम्पादक—हरीश भादानी

३—बरगद की छाया (कहानी संकलन) सम्पादक—डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

४—चेहरों के बीच (कहानी संकलन) सम्पादक—योगेन्द्र किसलय

५—माध्यम (विविध संकलन) सम्पादक—विश्वनाथ सचदेव

मुझे प्रसन्नता है कि शिक्षा विभाग की इस प्रकाशन योजना का तथा राज्य के शिक्षकों की रचनाओं का न सिर्फ राजस्थान में ही अपितु अन्य राज्यों में भी व्यापक स्वागत हुआ है। देश के ख्यातिनामा विद्वानों तथा प्रमुख दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्रों ने इस योजना का स्वागत किया है और सराहना की है।

इस वर्ष करीब दो हजार रचनाएँ हमारे पास आईं। उनमें उपन्यास इतने नहीं थे कि एक प्रकाशन पर विचार किया जाता। ऐसे ही एक संग्रह के लिए एकांकियों और कहानियों के संग्रह भी कम हो पाते थे। सामूहिक चयन की दृष्टि से इस बार कहानियों और कविताओं की तादाद कुछ ज्यादा थी। इस कारण इन दोनों विधाओं के दो-दो संकलन निकालने का निर्णय लिया गया और इन विधाओं से इतर रचनाओं को विविध संकलन हेतु रखा गया।

रचनाओं के चयन और संपादन हेतु दो वर्ष पूर्व जो नीति निर्धारित की थी, वह इस बार भी रही, याने प्रतिष्ठित विद्वान साहित्यकारों ने हमारे आग्रह पर चयन व सम्पादन का सारा कार्य किया और प्राप्त सामग्री का विवेचन करते हुए भूमिकाएँ लिखीं। इसके लिए विभाग डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, श्री नन्द चतुर्वेदी, श्री विश्वनाथ सचदेव, श्री हरीश भादानी, तथा श्री योगेन्द्र किसलय के प्रति आभार व्यक्त करता है। मुझे विश्वास है, अनुभवी सम्पादकों द्वारा लिखी गयी ये भूमिकाएँ नये साहित्यकारों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेंगी।

ने के लिये स्वतंत्र है। किन्तु काव्य-मर्मज्ञ जानते हैं
प्रतिपाद्य विषय का उतना महत्त्व नहीं है जितना कथन
। कथन-चारुता के अभाव में रचना स्वाद-रहित होती
सनं रचनाओं को हम संकलन में सम्मिलित नहीं किया
ओं में कथन की 'चारुता' का अभाव है।

ो भी अनेक रचनायें हैं जिनमें छन्द-दोष है। छन्द दोष
रण काव्याभ्यास की कमी है। छन्द-बद्ध रचना में छन्द
समता और गति-भंग जैसे दोष पैदा करती है। इन दोषों
र कठिन होता है। एक रचना की कुछ पंक्तियाँ ये —

ासता सदियों की, और काले कानून की,
उभारे आज भारती, अपने देश महान् की
मे आजादी के हित, तन मन अपना वार दिया
र की सेना के व्यूह को, पल भर में पछाड़ दिया
नका वह कैसा साहस, की मा परवाह प्राण की
गये उन वीरों को, चूमा था फांसी का फंदा
र था देहली में वो था वैरागी बंदा
सुभाष अरु शहीद भगतसिंह अमृत्य थाती अनाम की।

में कथन की चारुता का अभाव और छन्द दोष के कारण
र गति-भंग जैसे दोष आ गये हैं।

काव्य-बद्ध करने के लिये स्वतंत्र है। किन्तु काव्य-मर्मज्ञ जानते हैं कि रचना में प्रतिपाद्य विषय का उतना महत्त्व नहीं है जितना कथन भंगिमा का है। कथन-चारुता के अभाव में रचना स्वाद-रहित होती है। वस्तुतः जिन रचनाओं को इस संकलन में सम्मिलित नहीं किया है, उन रचनाओं में कथन की 'चारुता' का अभाव है।

ऐसी भी अनेक रचनायें हैं जिनमें छन्द-दोष है। छन्द दोष का मुख्य कारण काव्याभ्यास की कमी है। छन्द-बद्ध रचना में छन्द की टूटन विषमता और गति-भंग जैसे दोष पैदा करती है। इन दोषों का परिमार्जन कठिन होता है। एक रचना को कुछ पंक्तियाँ लें:—

> गई दासता सदियों की, और काले कानून की,
> आओ उतारें आज आरती, अपने देश महान् की
> वीरों ने आजादी के हित, तन मन अपना वार दिया
> दुश्मन की सेना के व्यूह को, पल भर में पछाड़ दिया
> था उनका वह कैसा साहस, की ना परवाह प्राण की
> भूल गये उन वीरों को, चूमा था फांसी का फंदा
> दहाड़ा था देहली में वो था बैरागी वदा
> वीर सुभाष अरु शहीद भगतसिंह अमूल्य याती जहाज की।

इन पंक्तियों में कथन की चारुता का अभाव और छंद-दोष के कारण विषमता और गति-भंग जैसे दोष आ गये हैं।

शिक्षक के सम्मान में लिखी एक रचना की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

> शिक्षक सम नहिं कोई आन
> गुण की नाहीं कोई सीमा, कैसे करूँ बखान।
> निर्गुण को गुणवान बनाए, दे विद्या का दान।
> निर्बल को बलवान करे, दे स्वस्थ्य नियम का ज्ञान।
> अनुशासन, सहयोग सिखाए, गढ़े चरित्र महान्।
> उपजावे ऐसा विवेक हो, नीर-क्षीर का ज्ञान।

इन पंक्तियों में किंचित कवित्व भी नहीं है। ये कबीर की 'गुरु गोविन्द' वाली पंक्तियों के समीप नहीं आतीं। स्तुति-परक पंक्तियां कभी-कभी घोर कठिनाई पूर्वक 'कविता' बनती है। गांधीजी और विनोबाजी के प्रति भी स्तुति-परक रचनायें इस संकलन के

रचियाँ बनाने में सहायक होते हैं वे रचनाकार की हैसियत से जीवनानुभव, आदर्श और काव्य-शैलियों का कैसा चुनाव करते हैं और भाषा की शक्ति और सार्थकता को कितना बढ़ाते हैं ? वैसे यह प्रश्न इन्हीं रचनाकारों से नहीं हिन्दी के अधिकांश रचनाकारों से सम्बन्धित है क्योंकि हिन्दी के अधिकांश कवि कथाकार लेखक स्कूलों, कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापक हैं।

इस संकलन में रचनाओं के चयन का आधार मुख्यतः कवित्व है—कथन-भंगिमा, अर्थ-लालित्य, छंद-गति, लय, दृष्टि-वैभव या अन्य जो भी मर्मस्पर्शी है। इन रचनाओं में कथ्य की दृष्टि से दलगत, दुरूहता अथवा किसी प्रकार का मताग्रह नहीं है जो वे समय के दबाव से कटी नहीं हैं। एक साथ पढ़ने पर वे सहज प्रतीत होती हैं। कुछ कविताओं को छोड़कर, जो प्रान्त की नयी पीढ़ी के प्रसिद्ध कवि-अध्यापकों द्वारा लिखी गयी हैं और परिपक्व रचनाओं की कोटि में हैं अधिकांश कवितायें 'रचना की आकांक्षा' को व्यक्त करती हैं। मेरी दृष्टि से यह काव्य-प्रयोजन भी महत्वपूर्ण है।

संकलन में यथासंभव विविधता परिलक्षित हो यह दृष्टि रही है। जीवन में एकरसता लाने वाली स्थितियों का अभाव नहीं है, शायद काव्य-कृतियाँ ही एकरसता से मुक्ति दिला सकती हैं। काव्य जब 'एक दृष्टि, एक मत' के प्रतिपादन का काम करता है तो वह अपने लिये प्रतिबद्ध न होकर दूसरे किन्हीं कारणों के लिये प्रतिबद्ध होता है। मेरी दृष्टि में काव्य एक व्यापक प्रतिबद्धता है, वह इसके लिये प्रतिबद्ध है कि जीवन में निहित संकीर्ण मन्तव्यों और एकरसता को तोड़ने का प्रयत्न करे। महान् कवितायें कदाचित् इसी अर्थ में काल-दृष्टियों को लाँघती हैं और रूप, रस, गंध, स्वाद की सृष्टि को विविधता और विस्तार देती हैं।

अनेक अध्यापक इस संकलन में अपनी रचना न देखकर कुपित होंगे। इनमें से कुछ ने लम्बी रचनायें भेजी हैं, विषय भी महत्वपूर्ण हैं। कतिपय रचनायें शिक्षक दिवस, शिक्षक की महानता, शिक्षक के कर्म-कौशल पर हैं और कई रचनाओं में बीस सूत्री कार्यक्रम छंद-बद्ध करने का प्रयत्न है। इसी प्रकार अन्य रचनाओं में कुछ अन्य विषय हैं। विषय की दृष्टि से इन रचनाओं में कोई दोष नहीं है। कवि का संसार असंख्य विषयों तक फैला है और वह किसी भी विषय को

काव्य-बद्ध करने के लिये स्वतंत्र है। किन्तु काव्य-मर्मज्ञ जानते हैं कि रचना में प्रतिपाद्य विषय का उतना महत्त्व नहीं है जितना कथन भंगिमा का है। कथन-चारुता के अभाव में रचना स्वाद-रहित होती है। वस्तुतः जिन रचनाओं को इस संकलन में सम्मिलित नहीं किया है, उन रचनाओं में कथन की 'चारुता' का अभाव है।

ऐसी भी अनेक रचनायें हैं जिनमें छन्द-दोष है। छन्द दोष का मुख्य कारण काव्याभ्यास की कमी है। छन्द-बद्ध रचना में छन्द की टूटन विषमता और गति-भंग जैसे दोष पैदा करती है। इन दोषों का परिमार्जन कठिन होता है। एक रचना को कुछ पंक्तियाँ लें:—

गई दासता सदियों की, और काले कानून की,
आओ उतारें आज आरती, अपने देश महान् की
वीरों ने आजादी के हित, तन मन अपना वार दिया
दुश्मन की सेना के व्यूह को, पल भर में पछाड़ दिया
था उनका वह कैसा साहस, की ना परवाह प्राण की
भूल गये उन वीरों को, चूमा था फांसी का फंदा
दहाड़ा था देहली में वो था बैरागी बंदा
वीर सुभाष अरु शहीद भगतसिंह अमूल्य यात्री जहाज की।

इन पंक्तियों में कथन को चारुता का अभाव और छंद-दोष के कारण विषमता और गति-भग जैसे दोष आ गये है।

शिक्षक के सम्मान में लिखी एक रचना को पंक्तियाँ इस प्रकार है:—

शिक्षक सम नहिं कोई आन
गुण की नाहीं कोई सीमा, कैसे करूँ बखान।
निर्गुण को गुणवान बनाए, दे विद्या का दान।
निर्बल को बलवान करे, दे स्वस्थ्य नियम का ज्ञान।
अनुशासन, सहयोग सिखाए, गढ़े चरित्र महान्।
उपजावे ऐसा विवेक हो, नीर-क्षीर का ज्ञान।

इन पंक्तियों में किंचित कवित्व भी नहीं है। ये कबीर की 'गुरु गोविन्द' वाली पंक्तियों के समीप नहीं आतीं। स्तुति-परक पंक्तियां कभी-कभी और कठिनाई पूर्वक 'कविता' बनती है। गांधीजी और विनोबाजी के प्रति भी स्तुति-परक रचनायें इस संकलन के

लिखे ऐसी नहीं है किन्तु कवि सोहनलाल द्विवेदी की 'चल पड़े जिधर दो डग-मग, में चल पड़े कोटि पग उसी ओर' जैसी कान्तिपूर्ण रचना केवल नारों या विनोबाजी के नाम मात्र से नहीं बनती, अनुभूति की गहनता और निरन्तर काव्याभ्यास से बन सकती है।

आपात स्थिति के सम्बन्ध में एक रचना की कुछ सम्बन्धित पंक्तियां द्रष्टव्य है।

> नहीं कोई बला है
> इरादों की नेक सला है
> जनगण मन का इसमें भला है
> समाजवाद की सही कला है
> इसीलिए तो आई।
> इमरजियसी भाई।।
> बाजार भाव सब नरम हुआ
> जनता का भ्रम सब दूर हुआ
> ऑफिस में सच्चा श्रम आया
> बकाया काम सब निपटाया
> समय पे सबको ले आई।
> इमरजियंसी भाई।।

कुछ रचनायें केवल शब्दाडम्बर हैं, वे कविताभास मात्र हैं। इस संदर्भ में ये पंक्तियाँ देखियेः—

> गति का नाम जीवन, स्थिरता का है मरण
> सूरज गतिमय, वसुधा गतिमय
> गतिमय सब चांद-सितारे
> गंगा गतिमय, यमुना गतिमय
> गतिमय सागर, प्यारे-प्यारे
> गति का नाम जीवन स्थिरता, का है मरण
> अपने अन्तर की गहराइयों में
> झाँक कर देखा
> अपनी आंखों की दृष्टि में
> झाँक कर देखा

तो पाया कि जीवन शाश्वत है
सौन्दर्य है
अभूतपूर्व है
ब्रह्मानन्दानुभूति है।

काव्य-मर्मज्ञ जानते हैं कि श्रेष्ठ कवितायें थोड़ा कहती हैं और मौन हो जाती है। क्योंकि जो अत्यधिक महत्वपूर्ण है उसकी शुरुआत वहीं से होती है जहाँ कविता चुप हो जाती है—थोड़ा सा कहकर। शब्दाडम्बर इस दृष्टि से कविता को प्रभाव शालिता से वंचित कर देता है।

सकलन के लिये भेजी किन्तु अमान्य रचनाओं के लिये इतना कहना अलम है।

अब उन रचनाओं की चर्चा करें जो इस संकलन में हैं। सकलित रचनाओं के सम्बन्ध में यह कहना पुनः आवश्यक है कि बहुत थोड़े से युवा कवि-अध्यापकों की रचनाओं को छोड़कर अधिकतर रचनायें *'रचनाभ्यास' के क्रम में हैं, रस-सिद्ध रचनाओं के क्रम में* नहीं। महानता की घोषणा इनके साथ नहीं लगी है। यह कहना इसलिये आवश्यक है कि जिससे पाठकों की अपेक्षायें महत्वाकांक्षी न हों।

इन रचनाओं में कथ्य की विविधता के साथ-साथ शैलियों की विविधता भी है। रचनाओं में गीत, नयी कवितायें, चतुष्पदियाँ और कुछ बहुत छोटी कवितायें हैं जिन्हें 'क्षणिकायें' कहने लगे हैं।

राजस्थानी की १७ रचनाओं में पर्याप्त वैविध्य है। फतहलाल गुर्जर की एक रचना 'वीर विरदावली' (जिसकी शैली परम्परावादी है) के साथ-साथ कुछ नव-गीत हैं और कुछ नयी कवितायें भी।

सौभाग्य से इस संकलन में प्रान्त के प्रसिद्ध नये अध्यापक-कवि भागीरथ भार्गव, रमेशकुमार शील, कमर मेवाड़ी, साँवर दइया आदि की रचनायें शामिल हैं इन रचनाओं में व्यंग, नाराजी, विवशता और दूसरे माध्यमों से वह सब अभिव्यक्त हुआ है जो समय के दबाव, सामाजिक क्रूरता और यथास्थितिवादियों के षड्यन्त्र तथा आज के मनुष्य की संश्लिष्ट बनावट को समझाता है।

उदाहरण के लिये भागीरथ भार्गव की 'किस हद तक' रचना को लें जिसमें अभिजात्य और मक्कारी का ढोंग करने वाले व्यक्तियों

पर असरदार व्यंग किया है और उनकी समर्पण प्रकर्म वाली मनः स्थिति व्यक्त करने के लिये लिखा है:—

> ठीक है-वही है आपका अपना संसार
> अपने कमरे में और कमरे से सटे कॉरिडोर में
> करते रहिये-चहल-क़दमी
> लगाते रहिये एक-के-बाद-एक चक्कर
> उड़ाते रहिये सिगरेट के कश
> देखते रहिये धुँए से बने छल्लों के
> बनने व मिटने के क्रम को

और अन्त में इन 'हुज़ूरवाला' को आम आदमी के तमतमाये चेहरे का स्मरण दिलाते हुए पूछा है :—

> आप नहीं आना चाहते है बाहर
> बस इतना बताइये
> कब तक उलझाते रहेंगे पहेलियाँ
> आखिर कब तक
> और किस हद तक ?

मेरी अपनी जिज्ञासा के लिये कभी-कभी सोचना चाहता हूँ कि साहब बहादुर के पास इस प्रश्न का उत्तर क्या है और यह कि उन्हें इस विभूतिमय स्थान पर बैठ कर बाहर के लोगों का तमतमाया चेहरा नजर आता है ?

सांवर दइया एक दूसरे ही रूप में इस साहबी-सत्ता और इसे स्थापित रखने वाले गिरोह की मैत्री को जानते हैं, व्यंग-भंगिमा से नहीं बल्कि सीधे-सीधे और शुद्ध कवि की तरह वे कहते हैं:—

> जब-जब भी हम अन्तिम निर्णय लेने के क्षणों में होते हैं —
> तुम आ पहुँचते हो
> आत्म-समर्पण का
> कोई-न-कोई नया रूप लेकर
> कभी तुम्हारे मुँह में लगाम होती है
> कभी हम समाधान के लिए
> सुविधा की टहनियाँ

• •

कभी गर्म-गोश्त की नुमाइश
कभी वातानुकूलित आवासों के नक्शे

सांवर दइया की कवितायें धुंध में खोई नहीं हैं। वे जानते हैं कि मध्यस्थों की एक पूरी सेना को लड़ाकू आदमियों के इरादे तोड़ने का काम सौंप दिया गया है और असमानता के साथ युद्ध-रत लोगों को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। अपनी राजस्थानी कविता में वे लिखते हैं :—

सांसा चालै
भजला दीसै
डगमगावै पग
म्हांरा इरादा
खरीदणा चावै
छल छद सूं जण
भुगतै नरकवाड़ो
कारी रात कोई

इसी प्रसंग में कमर मेवाड़ी को उद्धृत करना उचित होगा। उनकी इस कविता की ही नहीं तमाम कविताओं की यह विशेषता है कि उनसे स्थितियों के यथार्थ की तुरंत पहचान होती है। कमर अपनी कविताओं में 'व्यूह-रचना' की शैली से काम लेते हैं। संकलन की रचना में वे पूछते हैं:—

सिर्फ शब्दों के खूबसूरत खिलौनों से
कोई कब तक खेलता रहेगा
जब कि आदमी और आदमी के बीच का फर्क
आसमान और जमीन जितना विस्तृत है।

फिर इस कविता में वे एक समाधान-एक उत्तर प्रस्तावित करते हैं-एक क्रान्तिकारी और गुणित्मक उत्तर

मैं तो सिर्फ यह चाहता हूं
कि मुट्ठियों में बंद हवा
उजागर होती रहे
[illegible]

रमेशकुमार शील की कविताओं का स्वभाव दूसरे प्रकार का है-वे क्रुद्ध अथवा आक्रामक कवियों की श्रेणी में नहीं हैं। उनकी पिछली कवितायें अन्तर्मुखी रही हैं। गहरी आंतरंगिता और उदासी इन कविताओं की विशेषता थी। शायद हो कि अपनी अतीत कविताओं की उदासी से निष्कृति पाने के लिये या कि उस कृतित्व की अप्रासंगिकता समझ में आ जाने के कारण, जो भी हो, शील की रचनाओं में बदलाव दृष्टिगत होता है। इस संकलन की कविता 'खुद को बदलो' उस अन्तर्मुखिता से मुक्ति हासिल करने का प्रयत्न है। एक पूरा संसार बाहर फैला है 'घने वृक्षों, भोले कामगारों, अभाव-ग्रस्त किसानों, शर्मीलो-गंगाजल की तरह छहरती

किन्तु अर्जुनसिंह शेखावत अधैर्य के कवि हैं और यह उचित भी है कि व्यवस्था के समर्थकों को परिवर्तन कमियों का तेवर में आ सके। उन्होंने अपनी कविता का अन्त करते-करते चुनं है, लिखा है:—

पण सुणो ! म्हे जे नी रे सकिया
तो थाने भी नी रेवण-दूं ला। याद राख जो
ओ वक्त रो हेलो है
जुग री मांग है
जमानो पलटो खावै है:—

इस संकलन में समय के दबाव और जीवन के यथार्थ से कविताओं के अतिरिक्त कुछ मनोहारी, सहज गीत हैं। निर्ज शैली में लिखी इन गीत रचनाओं में नृसिंह राजपुरोहित कं रचना की सहजता मनोमुग्धकारी है:—

वन उपवन में कोयल बहकी
महक उठा मन का सुधि चंदन
चंचल कंगना
मुखरित पायल
पागल बिछुवा
बिंदिया घायल
धरती का सिंगार देखकर
कसक उठा अन्तर का बंधन

एक ललित गीत अब्दुल मलिक खान का भी है 'तुम तो बस इः सा कर दो'।

इस संकलन में जिन्दगी की भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों व्यक्त करने वाली कई छोटी-छोटी अर्थवान कवितायें हैं किन्तु सब पर टिप्पणी करना संभव नहीं है।

जिन कवियों की रचना पढ़ने का मुझे अवसर मिला है सब के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए यह प्रस्तावित कर चाहता हूँ कि काव्य-लेखन कुछ कठिन कर्म है इसलिये अभ्यास अं

निरन्तरता की आवश्यकता है। आज की जिन्दगी असाधारण इसलिये उसके अंतरंग को व्यक्त करने के लिये असाधारण दृष्टि और कौशल की आवश्यकता है। कौशल केवल अभ्यास से ही अर्जित हो सकता है।

शिक्षा विभाग से मेरा निवेदन है कि वर्ष में एक यही अवसर अध्यापकों की सृजन शक्ति को बहुत आगे ले जाने में समर्थ नहीं है इसलिये कुछ और अवसरों की तलाश आवश्यक है। सुझाव है शिविरा के साथ-साथ सृजन-धर्मियों के लिये कोई और मासिकी या त्रैमासिकी हो या 'शिविरा पत्रिका' में ही कुछ और पृष्ठ जुड़ जायें।

नन्द चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

(हिन्दी)

राजस्थानी

शाम रेगिस्तान की

धूल भरी आंधियां, उमसाये पल
शाम रेगिस्तान की नाप रही छल

स्मृतियां कुरेद रहे भूलते बबूल
जाने अंजाने सब करते है भूल
पग-पग पर बोये हैं ढेर भरे शूल
कहां मुस्करायेंगे रंग-रचे फूल ?

अंबर के माथे पर फैल रहे सल
शाम रेगिस्तान की नाप रही छल

धुंध आते गांव में विलुप्त हुए अर्थ
अपने ही लोगों मे हमीं हुए व्यर्थ
घटनाएँ जीवन की डालती पड़ाव
शब्द-शब्द रेत के चुनते असमर्थ

उलझी पहेलियां, डूब रहे हल
शाम रेगिस्तान की नाप रही छल

रोज-रोज सध्या का अपना इतिहास
सूखे हुए होठों पर दौड़ रही प्यास
भाषाएं आकर्षक, धुले आवरण
भीतर की जिन्दगी कितनी उदास

शुष्क पड़ी धरती है आंखों में जल
शाम रेगिस्तान की नाप रही छल

•

—अरविन्द पुरोहित

वक्त की तरह

वह चला गया
मेरे द्वार से
और
हाथ से निकले
वक्त की तरह
आज तक नहीं आया।

•

—अवधनारायण पाण्डेय ●

फिर भी

मंजिल है दूर और लम्बा अभी सफर ॥

हँसी बन समाती जो
आँसू बन ढलती है
आशा के गर्भ में
असफलता पलती है

ज्योति-संधि-पत्रों पर तम के हस्ताक्षर ॥

छाते उर-नभ पर हैं
मेघ अभिलाषा के
दुर्बोध अर्थ मगर
विद्युत् की भाषा के

वज्र बन टूटती है मेघ-वक्ष चीर कर ॥

मिलती विपरीत दिशा
अपने सब सपनों को
बुझा नहीं पाता हूँ
अंतस् की अगनों को

कारण मन्मथ नहीं और जल गया है घर ॥

चाहे हो जो भी पर
मुझको न रुकना है
मंजिल के अम्बर पर
सूरज बन उगना है

रोक नहीं पायेंगे पर्वत मेरे साहस की डगर ॥

●

—मरनी रॉबर्ट्स ●

बाकी जिन्दगी

चौखट से बाहर की जिन्दगी मेरी नहीं
क्योंकि सीढ़ियों पे बड़ी फिसलन है,
अन्तर का टूटापन
कोई दर्पण जोड़ता भी नहीं।
सांस की धौंकनी
पे—जिन्दगी कितनी और रुकेगी
एक दिन तो इन सारी रोशनियों के बीच,
एक अँधेरा ही मेरा,
अस्तित्व बनेगा—फिर भले ही
लोग कह लें कि मैं जीवित हूँ!
किस वक्त मुझे यह विचार आया
कि—जो छोड़ आया अतीत-
वह जीना तो नहीं था जी लिया है!
इस प्रायश्चित के लिये क्या
इस बाकी जिन्दगी को भी उजाड़ दूँ
नामवर जब मेरा पत्र लेकर
पहुँचेगा—तो दहलीज लांघकर
हाथ बढ़ाकर भी खत नहीं ले पाऊँगा
क्योंकि बीते अतीत और बाकी की जिन्दगी
की सन्धि-
किन आंखों से स्वीकृत कर पायेगी
यह सब कुछ!

—प्रणवनारायण पाण्डेय ●

फिर भी

मंजिल है दूर और लम्बा अभी सफर ।।

हँसी बन समाती जो
आँसू बन ढलती है
आशा के गर्भ में
असफलता पलती है

ज्योति-सुधि-पत्रों पर तम के हस्ताक्षर ।।

छाते उर-नभ पर हैं
मेघ अभिलाषा के
दुर्बोध अर्थ मगर
विद्युत् की भाषा के

वज्र बन टूटती है मेघ-व्यथा घोर घर ।।

जिसकी विपरीत दिशा
अपने सब सपनों की
बुझा नहीं पाता है
दग्ध की लपटों को

श्रावण बादल नहीं और जल रहा है घर ।।

चाहे हो जो भी पर
मुझको न रुकना है
मंजिल के द्वार पर
सूरज बन उगना है

और नहीं चाहिए चाँद मेरे [illegible] को डगर ।।

●

—प्रशनो रॉबर्ट्स

बाकी जिन्दगी

चौखट से बाहर की जिन्दगी मेरी नहीं
क्योंकि सीढ़ियों पे बड़ी फिसलन है,
अन्तर का टूटापन
कोई दर्पण जोड़ता भी नहीं।
सांस की धौंकनी
पे—जिन्दगी कितनी और रुकेगी
एक दिन तो इन सारी रोशनियों के बीच,
एक अँधेरा ही मेरा,
अस्तित्व बनेगा—फिर भले ही
लोग कह लें कि मैं जीवित हूँ !
किस वक्त मुझे यह विचार आया
कि—जो छोड़ आया अतीत–
वह जीना तो नहीं था जी लिया है !
इस प्रायश्चित के लिये क्या
इस बाकी जिन्दगी को भी उजाड़ दूँ
नामवर जब मेरा पत्र लेकर
पहुँचेगा—तो दहलीज लांघकर
हाथ बढ़ाकर भी ख़ुद नहीं ले पाऊँगा
क्योंकि बीते अतीत और बाकी की जिन्दगी
की सन्धि–
किन आंखों से स्वीकृत कर पायेगी
यह सब कुछ !

फिर भी

मंजिल है दूर और लम्बा अभी सफर ।।

हँसी बन समाती जो
आँसू बन ढलती है
आशा के गर्भ में
असफलता पलती है

ज्योति-संधि-पत्रों पर श्रम के हस्ताक्षर ।।

छाते उर-नभ पर हैं
मेघ अभिलाषा के
दुर्बोध अर्थ मगर
विद्युत् की भाषा के

वज्र बन टूटती है मेघ-वक्ष चीर कर ।।

मिलती विपरीत दिशा
अपने सब सपनों को
बुझा नहीं पाता हूँ
अंतस् की तपनों को

शरण अन्यत्र नहीं और जल गया है घर ।।

चाहे हो जो भी पर
मुझको न रुकना है
मंजिल के अम्बर पर
सूरज बन उगना है

रोक नहीं पायेंगे पर्वत मेरे साहस की डगर ।।

—कमर मेवाड़ी ●

बात का सिरा

बात का सिरा
तुम्हारी ओर से आरम्भ हो
या मेरी ओर से
यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है
जितना अधिक महत्त्वपूर्ण है
बातों का निर्णय

●

मैं बहस को नहीं
बहस में उठाये गये मुद्दों को
अधिक तरजीह देता हूँ
और यह समझता हूँ
कि किसी के विचारों का भण्डार
बहुत ज्यादा विशाल हो सकता है
पर आखिर उन विचारों की औकात क्या है

●

सिर्फ शब्दों के खूबसूरत खिलौनों से
कोई कब तक खेलता रहेगा
जब कि आदमी और आदमी के बीच का फर्क
आसमान और जमीन जितना विस्तृत है

●

इसमें न लहरों का दोष है
न समुद्र का
दोष तो सिर्फ तट का है
जो मनचाहे ही कटता है

•

मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ
कि मुट्ठियों में कैद हवा
प्रवाहित होती रहे
ताकि षड्यंत्र में शामिल लोगों के मुखौटे
उतारे जा सकें।

अप्रत्याशित, अनचाहा मीत।
(अभावों का जहरीला सांप)
एक लम्बा सा बिल बनाकर।
बना लिया है आज-कल
कुछ उसने ऐसा इरादा।
दिनभर की थकान से
चकना चूर हो कर,
जब भी मैं आता हूँ
तो
इन्तजारी में बैठा होता है
बेसब्री लिए
मेरी पत्नी और बच्चों से भी ज्यादा।
चाहता है आते ही मुझ से लिपटना
पर मैं संभल जाता हूँ।
तुरन्त दो कदम पीछे हट जाता हूँ।
और मन ही मन—
लगता हूँ बुद-बुदाने।
बेशर्म
बेहया

अभी तो रोशनी है, दिन है, उजाला है।
कुछ तो सोच
मैं हूँ
मर्यादाओं से जकड़ा सामाजिक प्राणी
और तू
अधिक क्या कहूँ
तू
तन और मन दोनों से काला है।।
तभी
वह जोर से फुंकारता है
बार-बार फन मारता है
लपलपाता है अपनी पैनी जीभ
और
ले लेता है मोर्चा
मुझ से मेरे ही घर में !

अनकही कविता

सोचों के समन्दर
चिन्तन की नाव,
दीठि तक फैले,
शब्दों के वहाव,
डूबे से पर्वत,
तैरती-सी सरिता,
गर्भस्थ शिशु सी,
अनकही कविता ।

•

—कृष्णानंद श्रीवास्तव

गीत

ओ ! मेरे मन, तेरे हाथों, मैं हरबार छला जाता हूँ।
फूलों तक तो पहुँच नहीं है शायद काँटे ही अपनालें,
इसीलिये मैं जानबूझकर, उलझी राह चला जाता हूँ।
भूल गया सारे चौराहे, गलियाँ, मोड़. किनारे, द्वारे,
पर चलना है इसीलिये मैं आगे और चला जाता हूँ।
यह तो सच है मैंने ही तो, सुख को अपनी गाँठ न बाँधा,
लेकिन आज समय की सिल पर, दुःख के हाथ दला जाता हूँ।
तेरे कारन मैं वसंत में भी मुस्कान बिखेर न पाया,
अपने कारन इस आतप मे सौ सौ अश्रु गला जाता हूँ।
मैंने तो समझा था सम्बल बनकर मुझे सहारा दोगे
क्या मालूम था, थके क्षणो में, बोझ बनोगे, पछताता हूँ।
भीड़ भरे बाजारों में तो अब तक सब से बच आया मैं,
घर की दीवारों के पैरों से लेकिन कुचला जाता हूँ।

•

संदर्भित सत्य

अभाव, मेरे अभिभावक हैं
जो मुझे, हमेशा घेरे रहते हैं।
दुःख, मेरे दोस्त हैं
जो अवसर मुझसे मिलने आते हैं।
मँहगाई, मेरे जीवन का
वह मरुस्थल है
जिसे पार करना असम्भव है।
गरीबी से मेरा
इतना घनिष्ठ परिचय है
कि वह मेरे घर को
अपना घर समझ कर
घर में अमरबेल सी फैल गई है।
उपेक्षाएँ वे उपहार हैं
जो बिना माँगे मुझे मिले हैं।
अस्वीकृतियाँ वे आशीर्वाद हैं
जो हर बड़े, छोटे सम्पादक ने मुझे दि
वैसे जीवनियाँ मुझे
उन लोगों की पढ़ाई गई हैं
जिनके जीवन में
अभाव नाम की वस्तु का अभाव था।

यदा कदा ऐसी फिल्में
मैंने देखी हैं, जिनमें
सड़क छाप हीरो का
फिल्म के अन्त में
करोड़पति की लड़की से
विवाह हो जाता है।
उन मंदिरों में
भगवान को ढूंढ़ने जाता हूं
जो मँहगाई बढ़ाने वाले
व्यापारियों के बनवाए हुए हैं
इन्हीं मंदिरों में वे सब
उपेक्षित, कुचले हुए लोग हैं
हाथ बांधे खड़े
जो अभी कुदाल चलायेंगे
नये मंदिरों की नींव के लिये

डूब मरने की हद तक

जानते हो
वह बड़ी करप्टेड है ?
खूबसूरत खोल में छुपा
एक चरित्रवान (?) वनमानुष
कामातुर वहशी आँखें मटकाते हुए
दूसरे के कान में फुसफुसाता है
दूसरा
आइने की तरह
बहुत लालसा से
वासना से दुम हिलाते हुए
अपनी सहमति उगल कर
लारें निगलता है

तथाकथित सभ्यता (?) की "सेफ" में
करप्शन
कितना कमनीय
कितना दुर्लभ है
बावली हुई
करप्टेड लड़की
पहली बार करप्शन का मतलब
साफ-साफ समझती है

करप्शन
यदि तालाब होता तो
दोनों मछलियों की तरह नहाते
डूब मरने की हद तक

और वह
तट पर खड़ी हुई
दोनों का डूब मरना एन्जॉय करती ।

अनुगीत

घर किये बैठे हैं गम, इस जिन्दगी के राज पर
ये नजर टिकती नहीं क्यों, जाने तख्तो ताज पर....

बांध कर पैरों में घुंघरू, हमने लोगों से कहा,
नाचना ग्राता है लेकिन, जिन्दगी के साज पर....

काट कर के पेट खुद का, जो रहे हैं इस तरह,
कि मौत भी हंसती है ग्रपने, जोने के ग्रंदाज पर....

तुम सिमट जाते हो मेरी, एक जरा सी बात से,
झेंप ग्राती है मुझे खुद ही, तुम्हारी लाज पर....

खैर, फिरभी ग्रापके, बढ़ते कदम रुक तो गये,
[illegible]

विवशता

सुबह से कर रहा हूँ
तेरा इंतजार।
निश्चित समय भी बीत गये
पर तुम नहीं आये
फिर भी निरंतर
कर रहा हूँ इंतजार।
सोचता हूँ कि—
तुम आने ही वाले हो
और
इसी मधुर आशा के सहारे
बीत रही है
इंतजार की लम्बी
और उबा देने वाली घड़ियाँ
ऐसी ही कोई न कोई आशा
जीवन जीने को विवश करत
अन्यथा
इस कुंठित और नीरस जीव
और है ही क्या ?

—गोपाल प्रसाद मुद्गल ●

45 . .

सन्नाटा, पानी और जिजीविषा

अँधियारा गहरा अँधियारा, मुझे जरूरत है पानी की।
सब दरवाजे मौन पड़े हैं, मुझे जरूरत है पानी की।

अभी सुबह तो बहुत दूर है,
पथ पर कोई पाँव नहीं है।
यों तो बैठा बीच गाँव में,
लगता कोई गाँव नहीं है।

वीराना केवल वीराना, मुझे जरूरत है पानी की।
सन्नाटा केवल सन्नाटा, मुझे जरूरत है पानी की ।। अँधियारा....

कब तक बैठा रहूँ यहीं यों,
कब तक शुष्क-साधना-चिन्तन।
बैठा हुआ न जड़ हो जाऊँ,
कब तक कोरा मानस-मन्थन।

चलो चली चेतना जागी, मुझे जरूरत है पानी की।
रोम-रोम में आग लग गई, मुझे जरूरत है पानी की ।। अँधियारा....

चलने लगा तोड़कर घेरा,
भय, संकोच, झिझक बन्धन का।
पलभर में ही हाथ लग गया,
अविरल स्रोत मुक्त जीवन का।

मन का मैल धुल गया सारा, मुझे जरूरत थी पानी की।
मन का मैल धुल गया सारा, मुझे जरूरत थी पानी की ।। अँधियारा....

●

मुखौटेबाज

अपने प्रत्येक कार्य में
दूसरों का सहयोग चाहते हो
पर
दूसरों के प्रत्येक कार्य पर
बाहर चले जाने का
या
बीमार हो जाने का
बहाना बनाते हो
और
जीवन के नाटक में
मुखौटे बदल-बदल
भर पेट खाते हो।

•

—जगदीशचन्द्र शर्मा ●

हिंसा और अहिंसा

कितने क्रूर हैं युद्ध !
जिनके फलस्वरूप
अनेक महिलाओं की मांग का सिन्दूर
छुट जाता है,
अनेक माताओं की गोद
सूनी हो जाती है और
अनेक बच्चों के माथे से
स्नेह का साया उठ जाता है।
इसका कारण है
हिंसा !
तबाह कर देती है जन जीवन को यह !
प्रत्येक हत्या में हिंसा का निवास है—
जिसका सूचक है हिंसा का दोष !
केवल यही नहीं—
मन मुटाव से लेकर
मद,
दम्भ,
कपट,
द्वेष,
निन्दा

भ्रष्टाचार अथवा
अनैतिक कार्य तक सर्वत्र
विभिन्न रूपों में हिंसा का निवास है !
आत्म विश्वास के अभाव में भी हिंसा है ! तब....
अहिंसा क्या है ?
स्वस्थ और संतुलित जीवन दर्शन !
जिसके सहारे
प्रत्येक व्यक्ति निर्भय होकर
पारस्परिक सद्भाव के आधार पर
सहयोग-पथ में
निरंतर अग्रसर होता रहे।

—जगदीश सुदामा ○

फागुन मनाने के दिन आ गये

झाँझ डफली बजाने के दिन आ गये,
अपने फागुन मनाने के दिन आ गये।

मुस्कुराना नहीं भूल जाए कोई—
रंग गालों पे मलने से चूकें नहीं।
ताल-नदियाँ सभी सूख जाएँ तो क्या,
जिन्दगी की अमरबेल सूखे नहीं॥

खूबसूरत बहाने के दिन आ गये,
सारे दुखड़े भुलाने के दिन आ गये॥

आओ, मिलजुल के गाएँ औ नाचें सभी,
हम अभावों को चेहरों पे आने न दें।
जिन्दगी के लिए दिलकशी चाहिए,
मौत का डर से मुश्किल को आने न दें॥

गोरियों के सजाने के दिन आ गये,
रूठे-रूठे मनाने के दिन आ गये॥

•

—जनकराज पारीक

रेत की नदी

एक दिवस के बाद दूसरा दिवस भुलावा दे जाता है।
एक प्रतीक्षा पगली पल पल सौ सौ छलनाएँ सहती है॥

जैसे प्यासे को मरुथल में
नदी रेत की पड़े दिखाई।
जैसे दिख जाए चकोर को
चंदा की जल में परछाईं॥
जैसे कोई भ्रमित बुद्धि हो
दौड़े स्वर्ण हरिण के पीछे।
ऐसे पथ पर पदचापों की
करता व्यर्थ हृदय पहुनाई॥

लोक रीत को छोड़ गांव को पगली ज्यों मेंहदी रचवाए,
ऐसे मेरी आस हठीली देहरी पर बैठी रहती है।

जैसे बुझी राख की ढेरी
में सुलगे कोई चिनगारी।
विधवा के सूने माथे पर
रोए यौवन की लाचारी॥
ज्यों गूंगे के मनोभाव पर
वाणी के सौ सौ पहरे हों,
यूँ बंदी है सुखद भूत के
तहखानों में याद तुम्हारी।

जैसे कोई धुन दर्दीली बहे बँसुरिया के रंध्रों से,
एक नदी यूं निकल हृदय से आँखों के पथ से बहती है।

—नन्दकिशोर शर्मा 'स्नेही'

क्षणिकाएं

मिली जुली
संस्कृति पर,
सुनकर
वक्ता के विचार
बोले वो-
'जुली' कम
पर
'मिली' ठीक चली,
आने दो
देख लेंगे-
'मिली-जुली'।

प्रतिविम्ब

कह रहे थे वो-
कि उनके व्यक्तित्व में,
क्या रखा है !
बस,
कुण्ठा ही कुण्ठा है !
सच,
खुद को
गैरों से भिन्न,
बताने का यह-
कितना सस्ता नुस्खा है !!!

दुराग्रह

खजूर का पेड़
देख, जो कुछ कहा-
रहीम ने,
शायद हम भूल गये !
इसीलिए तो-
छाया की खोज में,
उसके नीचे आ गए !!

—नारायण कृष्ण 'अकेला' ●

आदमी गुम हो गया

शीशे सा वक्त पारदर्शी हो गया
एक एक कर कई आकृतियां
हिनहिनाने लगीं,
कई चेहरे 'टेबल क्लाथ' पर थम गए
मैं दीपक जलाए खड़ा रहा
न सन्ध्या गुनगुनाई
न रात्री ने मौन भंग किया
बरामदे में दरिन्दों ने गोष्ठी की
शहजादे खामोश
टुकुर टुकुर ताकते रहे
न कोई धुआं उठा
न कोई उल्लू रोया
लक्ष्मी के भक्त
हड्डियां थामे दीपिका रखते रहे
शाम फिर अंधेरी हो गई
न कोई बिजली कड़की
न कोई बादल बरसा
खिड़कियों पर
खिड़कियां बदलती रहीं
वक्त का यह दम्भ था
या जुगनुओं की बगावत
आदमी गुम हो गया
और बच्चों के सांसें
छटपटाती रहीं
दम तोड़ती रहीं

●

—निशान्त ●

एक चित्र

बिल्कुल तुम्हारे कन्धों से
मेल खाती
बालू को देख कर
तुम्हारे रेगिस्तानी रास्ते का
बड़ा साफ साफ
चित्र उभरा
सचमुच हर टीला
सोने के पर्वत सा दिखा
उस दिन की
मुंडेर पर बैठी
सुस्ताती धूप
बहुत याद आई
और वह गीत शायद
तुमने नहीं
उसी धूप ने ही गाया था
●

—[illegible] रामपुरोहित

गीत : वासंती

मन उपवन में कोयल कूकी
महक उठा मन का सुधि चंदन !
मदमाए दिन
स्वप्निल रातें
मनचीती
मीठी सी बातें
मनमानी सी चोर मोर सी
सिहर उठा सांसों का स्पंदन
मन उपवन में कोयल कूकी
महक उठा मन का सुधि चंदन !
पवन प्रकंपित
मन रोमांचित
मदन [illegible]
तन आलोकित
अधर सुधा-रस पान कर रहे
प्रहर बने पुलकों के बंधन
मन उपवन में कोयल कूकी
महक उठा मन का सुधि चंदन !
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

परीक्षा और प्रश्न

महा मानव की परीक्षा में—
दो ही प्रश्न आते हैं।
प्रथम प्रश्न है 'संकट'
जो धैर्य, पुरुषार्थ, और साहस से
हल होता है।
और दूसरा है 'वैभव'
जो उदारता, नम्रता और संयम,
मानव में बोता है।
प्रश्न तो सरल हैं,
जो कोई हल करेगा।
मानव से—
महा मानव बनेगा।

अन्धों की बस्ती में बोलो
किसकी बाँह गहूँ ?
हैं कितनी बेशर्म हवाएँ
मौसम भी बेदर्द।
हर बिरवा कर दिया कलंकित
कली-कली बेदर्द ।।
ठीठ बहार भरे रस्ते
पतझर का संग धरे।
यह कैसी अनरी, चँदनिया
तम पर रीझ मरे ।।
मरघट में आ गया भटक कर
किससे व्यथा कहूँ ?
करवट बिकें, सिलवटें बिकती
बिकें यहाँ मुस्कान।
आधी से ज्यादा मण्डी में
भावक भरी दुकान ।।
अस्मत बिकें, किस्मतें बिकती
भूख बिकें, बेमोल।
यहाँ कबाड़ी तक न बेचते
प्यार भरे दो बोल ।।
श्वास निगोड़ी का भरमाया
कब तक धर धरूँ ?

—ब्रजेन्द्रसिंह भदौरिया ●

गीत

छोर नापते आँधी ओले इस विस्तृत आकाश के।
हम तो पंछी दिशा खोजते कटे पाँव विश्वास के।

सभी वृक्ष हो गये भूतिये
अँधियारे की बांह में,
चील बस रही कुत्सित इच्छा
जैसे मन की छाँह में,

नंगा खड़ा उड़ रहे कपड़े सब के सब अहसास के।

घोर रंग के इक्के तक को
दुखी दुग्गी पीटती,
ऊँचे घर की गिरती नाली
दामन सब का छींटती,

जीवन बिखरा ऐसे जैसे बिखरे पत्ते ताश के।

गलियारे में चले चेतना
केंचुल ओढ़े साँप की,
छिले छिलाये माथे गिनते
पिटी लकीरें बाँग की,

कुंठाओं से सफर न कटता छाले पड़े पलाश के।

दो नम्बर का काजल आँजे
बकरी घर की चल रही,
गपियाई सेजों पर सोने
बूढ़ उमरिया जल रही,

भोले अधर हलाहल पीते गन्दे नखुने माँस के।

●

—ब्रजभूषण

यह क्रम

रोज देखता हूँ
अपने मकान की खिड़की से
उन नेवलों को—
जो—
केलू के मकान में छिपे चूहों को
जबरदस्ती से पकड़कर बाहर खींच ले आते हैं
और—
दाँतों में भींचकर
जोर-जोर से धरती पर पटक-पटक कर
उन्हें लहू-लुहान-अधमरा कर देते हैं,
फिर–कुछ क्षण पश्चात्
क्षुधा मिटाकर-विजयी होकर
अकड़कर निर्भय चले जाते हैं;
सोचता हूँ–क्षोभ करता हूँ–
कि—
यह क्रम कब तक चलता रहेगा !

—भगवती प्रसाद गौतम ●

इंसान बने रहो

डरो मत
तुम्हारी ही है यह परछांही
मगर झुकना मना है इसे छूने के लिए
क्योंकि यह कुआ ऊपर से जितना शांत
जितना उदास है—
उतना ही गहरा है भीतर से।
यह नहीं चाहता
किसी को भी अपना ग्रास बनाना
हां, सहारा छूट जाने के बाद
हर वस्तु इसकी गहराई में समा जाती है,
मजबूर होकर
यह घबराये इंसान को भी
चबा जाता है—
अच्छा यही है: घबराओ मत
इंसान बने रहो।

●

मेडिकल जांच

बीमार आस्थाओं की मेडिकल जांच का परिणाम
अभी नहीं आया
कल की दुर्घटना में
मृत विचारों का
पोस्टमार्टम अभी बाकी है।
तुम इस भरी गर्मी की दोपहरी में
अस्पताल के कॉरिडोर में
यों कब तक खड़े रहोगे
घर क्यों नहीं चले जाते
मार्फिया के इन्जेक्शन में
सारा आसमान ही घुल गया है
तुम नींद की गोलियाँ क्यों नहीं खा लेते
मैं जानता हूँ दिमाग के ट्यूमर का
ऑपरेशन कितना खतरनाक है
और काले साये में
लिपटी उत्सुकता का भी कोई अर्थ है
किन्तु सफेद वस्त्रों वाली व्यस्त हवायें
अभी कुछ भी बता पाने में असमर्थ हैं।

—भागीरथ भार्गव ●
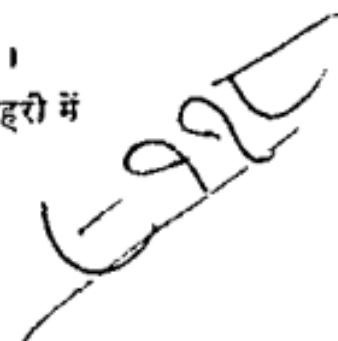
किस हद तक

मत जाइए बाहर
इसके लिए वस्तुतः आपको बाध्य नहीं किया जा सकता है।
सबको स्वतंत्रता है, अधिकार है
अपने-अपने संसार में जी सकने का।
ठीक है—यही है आपका अपना संसार
अपने कमरे में और कमरे से सटे कॉरिडोर में
करते रहिए चहल-कदमी
लगाते रहिए एक के बाद एक चक्कर
उड़ाते रहिए सिगरेट के कश
देखते रहिए धुएँ से बने छल्लों के
बनने व मिटने के क्रम को।
मत जाइए बाहर
बने रहिए वहीं अपने रचना संसार में
आक्रोश में दबाइए पुश बटन
या फिर फोन के डायल को घुमा
बीबी को दीजिए व्यक्तिगत निर्देश
और फिर अपने को
फाइल में डुबोते हुए
चपरासी को चाय का दीजिए आदेश।
चाय की सिप के साथ
ड्रॉअर से नई विदेशी पत्रिका निकाल
पलटते रहिए उसके पृष्ठ

○ १. आगन्तुक से भेंट करते समय
बन जाइए और भी गरिष्ठ।
आपके दोनों और ऊँचे-ऊँचे लगे
फाइलों के ढेर और ऊँचे-ऊँचे हो जायेंगे
आप नहीं चाहेंगे खोलना उनके फीते
आप चाहेंगे वे फाइलें ही ऊपर होंगी
और दूसरी चली जायेंगी और नीचे।
आप मत आइए बाहर—
किन्तु हुजूरे आला, बस एक बार, केवल एक बार
खिड़की के पल्ले खोलिए और बाहर झाँकिए—
आप उधर देखिए—
आम आदमी तम तमाया चेहरा
और उस मासूम बच्चे की निर्दोष मुस्कान
क्या आप इन दोनों में कोई सम्बन्ध ढूँढ़ पायेंगे ?
आप नहीं आना चाहते हैं बाहर
बस इतना बताइए
कब तक उलझाते रहेंगे पहेलियाँ
आखिर कब तक
और किस हद त

—मगर चन्द्र दवे

एक अगीत

मानव अपने जन्म से अब तक
कई बार लड़ा है.........
कभी जमीन के लिए,
कभी जोरू के लिए,
तो कभी
महज अपनी प्रतिष्ठा-स्थापन के लिए ।
इतिहास का पन्ना-पन्ना
इन्हीं बातों का गवाही है ।
पर, कुछ लोग !
भिन्न उद्देश्यों से
प्रेरित होकर भी लड़े हैं ।
वे लड़े हैं –
उसूलों के लिए,
वे लड़े हैं—
मानवता को दानवता रूपी—
ग्राह के मुख से उबारने के लिए......
व्यक्तिगत हित को
उन्होंने कभी प्रधानता दी ही नहीं ।
पर यदा-कदा
हम देखते हैं
कि कुछ लोग लड़ते हैं—
केवल लड़ने के लिए.........!
उनका विरोध होता है—

केवल विरोध के लिए·······!
बस, ये लड़ते हैं—
क्योंकि उन्हें लड़ना होता है......
(कभी इससे······कभी उससे......)
एक ऐसे अन्धे की तरह
जिसे चलना होता है
पर कहाँ···························?
किधर····························??
कितना··························???
उसे भी मालूम नहीं होता······?

नन्हें नन्हें इक्कीस सूर्य

एक दिन
अचानक आकाश साफ हो गया
वहाँ एक नहीं
नन्हें-नन्हें इक्कीस सूर्य उग आए
पथ सभी द्युतिमान हो उठे
उस दिन
पहली बार मैंने देखा
कि अंधेरा भी पछाड़ खा-खा कर रोता है
उसके फासिस्ट हाथों को
लकवा भी होता है।

•

नयी भोर नया वर्ष देती है
हमसे कुछ नयी शपथ लेती है
अपने आकाश की सीमा को पहचानो
सतरंगी चाहों की पतंगों को फिर तानो
झूठों के वादों-सा भ्रम टूटे
साफ सरल जीवन का क्रम फूटे
टीस फिर न पनपाए इस मन में
काश, ये हुए होते।
काश, ये किये होते।

नया वर्ष : एक अनुभूति

बीत गये दिन
तीन सौ पैंसठ बार
जागते-सोते
छोड़ गये हाथों मलते विचार
काश, ये किये होते
काश, ये हुए होते।
खिलती कलियों ने सोचा कि फूल बनकर
औ' गंध से संवर कर
रितुराज को मनाएंगे
रंग से रिझाएंगे
कब उजड़ी फाग की बरात
कब हुई अनचीती बात
काश, गुल खिले होते !
काश, दिल मिले होते !
जीवन की फिसलन पर फिसल गये
काल के चिकने तलवे
छोड़ गए चादर-बाहर निकले
अरमानों के मलबे
कुंठाओं के बलवे
अपने ही बूतों पर रह पाते
अपने ही जूतों से चल पाते
काश, सुख सधे होते !
काश, दुख दबे होते !

नयी भोर नया वर्ष देती है
हमसे कुछ नयी शपथ लेती है
अपने आकाश की सीमा को पहचानो
सतरंगी चाहों की पतंगों को फिर तानो
झूठों के वादों-सा भ्रम टूटे
साफ सरल जीवन का क्रम फूटे
टीस फिर न पनपाए इस मन में
काश, ये हुए होते।
काश, ये किये होते।

—मनमोह

कुहरिल सुबह

अलसुबह
धुनिये-सा सूरज
धुनक्-धुनक धुन्न् धुन्न्
धुन रहा है
सेमली धूप
ऐसे में
अलसिया पहाड़ का
निठल्ला गबरू बैठा
जैसे चिलम पी कर
भक्-भक् धुआँ उगलता
मुक्-दूर
मुग्ध
निहार रहा है
किरमी पदा में लेटी
बलखाकर अलसाती
बिखरता माही नदी का
अल्हड़ रूप !

•

—महावीर "जोशी"

चल। आयगी रोशनी भी

ये सीधे और चौड़े पथ
उन्हीं के महल नुमा
घरों की ओर जाते हैं
निर्माण किये हैं जिन्होंने
तुम्हारे लिए-टेढ़े और घुमावदार रास्ते
जिन पर तुम, भटकते रहे हो
भटकते रहोगे
बन्धु मेरे !
मत आवाज दो रहबरों को
आओ, हम स्वयं ही
पहचानलें गंतव्य अपना
और स्वयं ही करें-पथ निर्माण भी।

जिनके हाथों में मशालें थमी थी
उन्होंने
सभ्यता के नाम पर
फेंक कर उन्हें, टार्चें उठाली हैं
बस एक ही ओर जाती है
रोशनी जिनकी।
बन्धु मेरे
कब तक बैठे रहोगे
बाँटी हुई रोशनी की प्रतीक्षा में
आओ हम टटोलने की शक्ति को जगायें
घुप्प अंधेरे में ही सही-पैर तो बढ़ायें
फिर खुद ब खुद
चली आयेगी रोशनी भी।

—मीठालाल खत्री ●

बातें नहीं

ग्रंधेरी रात में
कुत्तों के भोंकने से
नहीं भागता—
　　　　ग्रंधेरा है
हो हाथ में मशाल
फिर देखो
किस तरह भागता—
है वह

—मुखराम माकड़

परिवर्तन

याद नहीं—किस अंधेरी कोठरी में—
पहले पहल रोशनी देखी थी ।
पता नहीं शैशव कब आया-कब गया ।
हां, बचपन की कुछ खरोंचें अब भी याद हैं ।
पता ही नहीं चला और पतली आवाज—
मोटी हो गयी।
बड़ों की डांट-फटकार-दुत्कार—
किशोर कानों को-कितनी कड़वी लगती थी तब !
फिर अचानक ही-बिजली सी कौंधी
रोम रोम में 'मैं' ही 'मैं' नजर आने लगा—
ऐसा लगता था—पहाड़ को उठा लूंगा ।
दुनियां को हिला दूंगा-आकाश को मंगा लूंगा ।
खून की गर्मी से नस नस गर्म थी—
तब खुद से बड़ा भगवान भी नजर नहीं आता था ।
फिर अचानक ही आकाश से
धरती पर गिर पड़ा
न जाने कब माथे पर सलवटें आ गईं ।
पता भी न चला और चमड़ी की चिकनाहट में—
अचानक खुरदरापन समा गया—
धागा धागा खुरदरा बन गया—
गहरी चोटें खा-खा न जाने कब
खून सर्द हो गया ।
पुर्जे-पुर्जे में जंग लग गया।

पता भी न चला और दाँत हवा हो गये—
नज़र पर चश्मा चढ़ गये—
आवाज़ की मोटाई और मोटी हो गई।
अब खुद की आवाज खुद को ही
खौफनाक सी लगने लगी।
नहीं मालूम कैसे और कब—
झुर्रियों का सफेदी से गठजोड़ा हो गया।
सब कुछ धुँए सा उड़ गया—
बस सिगरेट के बचे खुचे टुकड़े सा-कुछ रह गया।
पता नहीं कुछ क्षणों में-क्या से क्या होने वाला है।
शायद-याद भी कुहरे सी उड़ जायगी।
शायद-शब्दों की कुछ गूँज रह जायगी।

—मोडसिंह 'मृगेन्द्र'●

अनुकरण बनाम संस्कृति

क वक्त था
मारे पुरखा
एं कुटी या महालयों को चौ
सज्जित गमलों में
नेह सिक्त करों से
लसी का पौधा लगाते
तिदिन
ासना के स्वरों में
द्धा जल चढ़ाते
ज भी वक्त है
: हम
धानुकरण नहीं करते
ायद संस्कृति को हम
ीकार नहीं करते)
ी तो
लगाते हैं कांटेदार कैक्टस
नो चौपाल में
ा दिन सींचते हैं
रे पर गौरव लिए
कभी कभी
तरस जाते हैं
तुलसी के दो पात के लिये
कोई बताए तो ?
हमने बोए हैं कैक्टस
किस सौगात के लिये ?

—मोहम्मद सदीक ●

कविता

नोजवान ! सच !
तेरा हाथ जोड़ हथियार—
बासी हो गया है—थोदा है।
मुट्ठियाँ तान—अकड़के चल
झपट के छीनले—बाज की तरह
अपना-हक़ अपना अधिकार
हाथ—जोड़ संस्कार
फर्शी सलामों की मार
सीने में—मोच—कमर में कूब ?
काफ़ी है—तेरे मुचे—चोट खाये
खंडित व्यक्तित्व के परिचय के लिए
यह तेरा नहीं—मत स्वीकार
यह संस्कार !
बिन बुलाये महमान की तरह
स्वभाव में समाने से पहले
ठुकरादे—ठोकर मारदे
पनपने दे उस अहम को
जिसमें जीवन का नशा है।
जो अपने आपको समझने समझाने में सार्थक है।

—रमेशकुमार शील ●

अब खुद को बदलो

अब तुम पुरानी कविताएँ पढ़ने के बजाय,
नई कविताएँ लिखो,
कविताएँ जो दिन हैं,
कविताएँ जो रात, घन्टे, मिनट, सेकंड है
सूर्य की विकीरित, अंश जीवी-प्रखर किरणें है
उनको जहाँ तहाँ से समेटो
बहुत रह चुके शहरी बस्तियों में
गांव की पगडण्डियों पर खड़े घनी छांह वाले,
आम, पीपल, नीम, शहतूत बरगद के पगौढ़े वृक्ष
असंख्य शब्दों, संगीत ध्वनियों में
तुम्हें पुकारते हैं,
रंभाती हुई गायें, जुगाली करते बैल;
भोले कामगर, जर्जर अभाव ग्रस्त किसान,
शर्मीली—गंगाजल की तरह छहरती, वधू बहूरियाँ
तुम्हें प्यार देने,
तुम्हारा शीर्ष छूने को पुकारती हैं—
उनकी आवाज़ सुनो;
बहुत सुन चुके;
सिनेमा के गीत; राक एण्ड राल की तालें
तुम गलत जगह पर, खोज रहे हो कविताएँ—

वह तुम्हें, हरे-भरे मैदान, खेतों खलिहानों के आसपास मिलेगी
बेशक—शहर में भी पहुँचती है, धूप
लेकिन वहाँ नहीं है पंखेरू
वे सब कैद कर लिये गये हैं
धान छिलकों की तरह, उनके गीत, बिखर गये हैं—
खेतों मे हल गोड़ते किसान,
बकरियाँ चराता गड़रिया
मछलियाँ पकड़ता मछेरा
सड़क कूटती मजूरिन, ईंटगारा ढोते कामगर,
इन सबको,
तुम्हारी कविता की छाँह की जरूरत है—
अब तुम्हें नये सृजन के लिए
पैदल गाँवों में निकलना है।

•

—रमेश भारद्वाज ●

संक्रमण काल

इंजीनियर और डॉक्टर,
वकील और मास्टर,
ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट,
पास पड़ोस में,
शहर-गाँव में—
बैठे हैं बेकार।
दफ्तर-दफ्तर—
भटकते हैं लाचार।
जिन्दगी से बेजार।
कोई बन गया पागल,
कोई कट मरा—
रेल से।.
कोई डूबा—
कुए-नदी-तालाब में।
मेरा परिचित है—
एक लुहार।
कहता है—
'काम बहुत है'
होता ही नहीं।
मुझे खाती चाहिये,
खाट सुधरवानी है,

किवाड़ बनवाने हैं।
खाती मिलता नहीं,
मिलता है तो
उसे फुरसत नहीं।
मैंने सिलने को दी शर्ट,
दर्जी भी कोई नहीं था—
एक्सपर्ट।
फिर भी एक महीने तक—
चक्कर खाये—
घर-दुकान के।
मैं देखता हूँ,
एक ओर काम है,
ढेर-ढेर-ढेर।
दूसरी ओर—
बेकारों की है—
असीम सेना।
किसान का लड़का—
नौकरी खोजता है।
लुहार का लड़का,
खाती का लड़का,
नौकरी खोजता है।
अनाज मँहगा है—
पर किसान खेत बेचता है।
अब उसका बेटा—
मिट्टी में हाथ नहीं भरेगा।
सफेदपोश बन कुर्सी पर बैठा—
काम करेगा।

लुहार और खाती के बेटे—
अब पसीना क्यों बहायें ?
पंखे के नीचे बैठे—
दस्तखत करेंगे—
और मोटी तनखा लेंगे।
बेकार नौकरी के लिए—
भटक रहे हैं।
मेरी खाट-कमीजें,
पड़ी रहती हैं।
लुहार थक कर—
निश्वास छोड़ता है।
किसान जमीन से—
नाता तोड़ता है।
है यह सब—
क्या हाल ?
विवेक बोल उठा
अरे भई,
यह है सक्रमण काल।

•

—रमेश शर्मा 'एकाकी'

लॉटरी महिमा

जय रघुनन्दन, जय सियाराम !
एक महात्मा दे गए, ज्ञान चन्द को राय !
राज्य लॉटरी के तुरत, लो कुछ टिकट मँगाय !

सारे कष्ट हरेंगे राम ! जय रघुनन्दन...........
बाबूघोखे लाल के, मन में था अरमान !
दिल्ली में मिल जाय बस, कोठी आलीशान !!

देख नतीजा हुआ जुकाम ! जय रघुनन्दन...........
बजरंगी ने सोचकर, लेलीं टिकटें चार !
स्कूटर की तो बात क्या, लेलेंगे अब कार !!

किन्तु योजना ध्वस्त तमाम ! जय रघुनन्दन...........
धरमदास भी दे रहे, हैं टिकटों पर ध्यान !
किसे पता कब फाड़कर, छत दे दे भगवान !!

हरियाणा का मिले इनाम! जय रघुनन्दन...........
घूरेमल थे सोचते, चोखा यह व्यौपार !
हींग लगे ना फिटकरी, हो जाये निस्तार !!

अंक खोजते हो गई शाम ! जय रघुनन्दन...........
नूर मुहम्मद दे रहा, खुदा बख्श को ज्ञान !
कभी तो अल्लामियाँ के, भनक पड़ेगी कान !!

टिकटें लेना अपना काम ! जय रघुनन्दन...........

घोषो लाखों ले मरा, करमचन्द हैरान !
अपनी किस्मत के हुए, क्यों सब चक्के जाम !!
बेड़ा पार लगादो राम! जय रघुनन्दन.........
देख-देख परिणाम को, दयाराम खिसियान !
दो नम्बर से बच गया, सौ का पता हाय!!
अपना भी हो जाता नाम! जय रघुनन्दन.........
हम भी खुश-खुश ले रहे, हर महिने छः सात.!
घरवाली नित टोकती, कहो! लगा कुछ हाथ !!
मिला न अब तक एक छदाम ! जय रघुनन्दन.........
'एकाकी' किस की कहूं, मन ही राखो गोय !
लॉटरियों के फेर से, बाकी बचा न कोय !!
कुछ लें खुल कर, कुछ बेनाम ! जय रघुनन्दन.........

—रामस्वरूप परेश

मुक्तक

फैल गये जब जीवन पथ पर नाना विपदाओं के पत्थर
तब नाजुक से पंख मिले दो औ फैला उड़ने को अम्बर
पर मैं पाकर भी पर अंबर उड़ा नहीं इस कारण शायद
कस कर बांध दिये हैं विधि ने मेरे इन पांखों पर पत्थर।

कर गया है पार ऊँचे से गगन को आदमी
खोजकर ब्रह्माण्ड को खुद खो गया है आदमी
विज्ञान से संघर्ष करते बुद्धि बूढी हो गई (पर)
प्यार देने में रहा असमर्थ पागल आदमी।

शब्द वही है अर्थों की भाषा बदली है
पंथ वही है चरणों की आशा बदली है
वही मनुज है वही समय अंबर धरती भी
केवल आज समय की परिभाषा बदली है।

थी कभी इतनी सुहानी शाम अपनी भी
बिक गई खुशियाँ सभी बेदाम अपनी भी
एक पल को झाँकते मुड़कर समझता मैं
जिन्दगी कुछ आ गई है काम अपने भी।

सृजन-सम्पादन-समीक्षा का उनके नाम मील का पत्थर है-'बिन्दु', जिसने नए नाम सामने नहीं रखे वरन् स्वस्थ विचार-विमर्श अनेकानेक रास्ते गढ़े। "बिन्दु" का ठहराव भी कसक के साथ और-और ऐसे प्रयत्नों की शुरू का न्यौता बना हुआ है।

अकादमी के प्रकाशनों के साथ प्रान्त के बाहर की अनेकानेक पत्रिकाओं पुस्तकों के सहभागीदार नंद चतुर्वेदी 'छोटी' से 'बड़ी' तक सभी पत्रिकाओं में धापकोई की भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं। १९२१ में जन्मे श्री नंद चतुर्वेदी विद्या भवन टीचर्स कॉलेज और रूरल इन्स्टीट्यूट में पिछले तीन दशकों से अध्यापन कार्य कर रहे हैं। शिक्षक के रूप में भी श्री नंद चतुर्वेदी "शिक्षण पद्धति", क्या पढ़ाएँ और "कैसे पढ़ाएँ" की विविध "गोष्ठी" किसी वर्कशाप में अपने अनुभव, अपने दायित्व और अपनी धारणा रखने का एक भी अवसर नहीं छोड़ते।

कवि-सम्पादक-समीक्षक और शिक्षक नंद चतुर्वेदी चर्चा के लिए नाम के साथ एक विषय भी है।

सम्पर्क . रूरल इन्स्टीट्यूट विद्याभवन
उदयपुर (राज.)

'कहता हूँ मेरी गाथों ! तुम
हो चिर कालिक वरदान रहो
चाहे इसको तुम गान कहो।

जीवन का सार समुद्र मथा
बस उसकी केवल एक कथा
मिटना अधिकार हमारा है
जीवन संगनि है अमर-व्यथा
दुख. मधु-मदिरा की प्याली है
मत इसको तुम विषपान कहो
चाहे इसको तुम गान कहो।

दुःख की मीठी-मीठी थपकी
खोये सपनों की मृदु झपकी
मद होश बना देती मुझको
दो बूंद गरल मिश्रित मय की
बनने के इस अभिनय में ही
मर मिटने का अभिमान कहो
चाहे इसको तुम गान कहो।

सब अपनी प्यास सँजोये हैं
सब अपने ही में खोये हैं
पर मेरी आशाओं ने मिट
नूतन विश्वास पिरोये हैं
खोकर ही अपने को पाते
जब पाने का अरमान न हो
चाहे इसको तुम गान कहो।

इसलिए कभी कुछ गाता हूँ
बस अपना मन बहलाता हूँ
जब दुःख ही अमर यहाँ पर है
चिर सुख इसमें ही पाता हूँ
सुख की मुझको कुछ चाह नहीं
चिर दुःख-मेरे अभिमान रहो
चाहे इसको तुम गान कहो।

•

प्रकृति और चरवाहे

ग्रामों की बगिया, छाया की फरिया,
फैली थी ओर छोर से,
लौटते पखेरू भोर के।
कूकती कुइलिया, बजती मुरलिया,
कलरव थे गीत फाग के।
बजते थे बीन राग के।।
नाचती थिरकती—चिड़ियाँ फुदकती,
चोंच से कुरेदती जमीं।
जान पाती चुगे की कमी।।

नाचती लजाती—उड़ उड़ ग्राती,
खेलती थी खेल प्यार के।
दूर भागती थी जीत हार के।।

चिड़ियों की चिहुँ चिहुँ-कपोती की कुँहू कुँहू,
लगती थी ग्रति ही भली।
खिल जाती मन की कली।।

मैमनों की मुन मुन—घन्टियों की टुन टुन,
मुस्कराती हास से—हर्ष से उल्लास से,
लौटती थी अपने सदन।
सींग से खुजाती थी बदन।।

हवा के झकोर से—पपरी एक छोर से।
उड़ उड़ होती थी परी॥
मुड़ मुड़ झाँकती परी॥

सूखे कटे खेत में—दुपहरी के रेत में
नंगे पांव तलवे में जली।
सी सी करती पन्जे पै चली॥

जान करके घास हो—देख के जवांस को।
चल पड़ी शोभा की सनी।
चुभ गई काँटे की अनी॥

व्याकुल हो डोलती, काँटे को टटोलती,
मुख से न बोलती परी।
जान कर गरीबी की घरी॥

श्रम बिन्दु भाल पर—आँसू बहे गाल पर
चुपचाप लाठी पकरी।
दूर भाग चली सब बकरी॥

किसलय की लालिमा—हरी नीली कालिमा,
सूखी पीत बूटियाँ—गांव की वधूटियाँ,
दीख पड़ी दूर ध्यान में।
दौड़ परी मैदान में॥

—लक्ष्मी पुरोहित ●

सभ्यता का बोझ

वैसे ही
जिन्दगी में
बंधन क्या कम हैं
जो तुम कहते हो—
'खाना खाते समय
आवाज न हो
अधिक मुंह न खुले'
लेकिन
तुम्हारी इस सभ्यता का
बोझ मुझ से
सहा नहीं जाता
घुटन होती है
तुम्हारे इस
सभ्य वातावरण में
तुम भले ही रहो
इस सभ्यता को परतंत्र
किन्तु
मुझे तो रहने दो
असभ्य व गंवार
किन्तु स्वतंत्र।

●

—वासुदेव चतुर्वेदी

ऊपर-नीचे

कुछ दिनों पहले
लगता था सब ऊपर को,
जारहे हैं,
पर,
अब लगता है
चढ़े हुए तेजी से नीचे आ रहे हैं।
इन चढ़ते उतरते
मायूस चेहरों का राज क्या है ?
वह बोला
"देखता नहीं
हुकूमत का डंडा
तेजी से घूम रहा है।
अनुशासन जम गया
अकर्मण्यता भाग गयी
हर इन्सान इन्सानियत का चोगा पहने
मस्ती से झूम रहा है !
इस आपतकालीन स्थिति ने
ऐसा असर कायम किया
कि,
ऊपर वालों को नीचे
नीचे वालों को ऊपर कर दिया है।"

—वासुदेव चतुर्वेदी

ऊपर-नीचे

कुछ दिनों पहले
लगता था सब ऊपर को,
जारहे हैं,
पर,
अब लगता है
चढ़े हुए तेजी से नीचे आ रहे हैं।
इन चढ़ते उतरते
मायूस चेहरों का राज क्या है?
वह बोला
"देखता नहीं
हुकूमत का डंडा
तेजी से घूम रहा है।
अनुशासन जम गया
अकर्मण्यता भाग गयी
हर इन्सान इन्सानियत का चोगा पहने
मस्ती से झूम रहा है!
इस आपातकालीन स्थिति ने
ऐसा असर कायम किया
कि,
ऊपर वालों को नीचे
नीचे वालों को ऊपर कर दिया है।"

—विश्वम्भर प्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी' ○

अपने दीपक बनो

दर्पण को देख
मत मारो पत्थर
स्वयं को सुधारो
नहीं तो एक चोट
अनेक खोट
पैदा कर देगी
छोड़ो हठ
सतत् गति से करो साधना
अपने दीपक आप बनो।

•

—श्रीनन्दन चतुर्वेदी

मैं समय हूँ कह रहा हूँ आँख खोलो

इन्द्र धनुषी लोक निद्रा का सुहाना
स्वप्न कञ्चन मृग बने ललचा रहे हैं
भोर की शीतल पवन के मंद झोंके
सुरभि लहरों से सतत नहला रहे हैं।

और तुम भ्रम के सरोवर पर छिटकती
चाँदनी में इस कदर डूबे हुए हो
याद ही तुमको नहीं रवि के उदय की
रोशनी से बे खबर करवट लिये हो।
टेरती है दूर से मंजिल बटोही—
नींद छोड़ो जागरण के स्वर सँजोलो
द्वार पर दस्तक लगाने आ गया हूँ,
मैं समय हूँ, कह रहा हूँ आँख खोलो।

देखते ही देखते लू के सिपाही
हर दिशा को, रास्ते को घेर लेंगे,
आग उगलेगा तना आकाश सिर पर
और धरती से प्रबल शोले उठेंगे
फासले को नापने की बात कैसी ?
तब चले तो राह में रुकना पड़ेगा
क्षण कि जो अनमोल, निद्रा में गँवाये,
मोल उन सब का तुम्हें भरना पड़ेगा।
इसलिये उठ चेतना के मंत्र बोलो
ठीक अवसर पर तुम्हें चेता रहा हूँ
मैं समय हूँ, कह रहा हूँ आँख खोलो।

—श्याम मिश्र ⚫

हानि-लाभ खाता

मानवों से उनके
सृष्टि रूपी रंग मंच पर
विदूषक का-सा पार्ट अदा कराने के बाद
निष्क्रमण कराने के लिए
हे मृत्यु ! तुम एक सहस्र दरवाजे रखती हो
यह जीवन-चक्र बहुत-सी दहलीजों के सदृश है
इसका तभी आभास होता है
जब तुम्हारा अंतिम दहलीज पर पदार्पण होता है
और दरवाजा खुलता हुआ
यह पूर्व-सूचना-सी देता है कि
इस आदमी ने अपनी जिन्दगी के
सारे कार्य-कलाप सम्पूर्ण कर लिए
तब वह अपने 'हानि-लाभ' को मिलाता हुआ
अपने 'स्व' से अंतिम प्रश्न करता है कि
क्या मैं नफे में रहा ?

—श्याम त्रिवेदी

कारवां रुकेगा नही

जिन व्याघातों और असगतियों के लिए
मन थर थरा जाता है
समय के जुड़ाव से विधिवत
वे छिन्न-भिन्न हो जाती हैं
किन्तु जिनके सम्बन्ध में
कभी हमको
किसी व्यवधान की कल्पना नही होती
वही एक दिन
नागपाश बनकर
जीवन ग्रस लेती हैं
कोई नहीं जानता
भविष्य
कितना प्रकल्पित हो सकता है
कोई नही कह सकता
पूर्व निश्चित कार्यक्रम की
क्या गति हो सकती है
कोई नही जानता
विघ्नों और व्याघातों को
जो इसे
सफलता दें या असफलता
हाँ दृढ़ता और संकल्प की शक्ति
हमें अनुप्राणित करती है
इस विश्वास से
कुछ भी हो कारवां हमारा रुकेगा नही, बढ़ता रहे

इस बार...

एक बार नहीं
कई बार हुआ है यह
कि जब-जब भी हम
अन्तिम निर्णय लेने के क्षणों में होते हैं
तुम आ पहुँचे हो—
आत्म समर्पण का
कोई-न-कोई नया रूप लेकर !
कभी तुम्हारे मुँह में घास होती है
कभी हमें ललचाने के लिए
सुविधाओं की टॉफियां
कभी गर्म गोश्त की नुमाइश
और कभी वातानुकूलित आवासों के नक्शे !
तिल-तिल कर बटोरी गयी आग
तुम्हारे समर्पण का शिकार बन
फिर बिखर जाती है
आसानी से न सहेजे जा सकने वाले
पारे की तरह !
अपनी सफलताएँ देख हर्षाने वालों !
आग सहेजने-बटोरने की प्रक्रिया बन्द नहीं होगी
बन्द नहीं होगी
इस बार हम तुम्हारे हर छद्म को
बेनकाब करने को ठाने बैठे हैं
इतिहास ने सतर्क कर दिया है हमें
अब गलतियों की पुनरावृत्ति हो
यह न तो इतिहास चाहता है
और ना ही हम !

—हनुमानप्रसाद बोहरा ●

हम राष्ट्र-निर्माता

हम गुम शुदा से
अनमने, उलझनों में उलझे
चाहते हैं कि
भावी पीढ़ी सुलझे....
हम तम संचयी, पथ भ्रमित
कुर्सियों से चिपके
विचारते हैं
कि कोई रोशनी का टुकड़ा
आसमान से टपके
यथार्थ यह है
कि नई कोंपलो पर
छा रहा घना कोहरा है।
हम भी यही चाहते हैं
कोहरा जमा रहे
दिन पूरा हो जाये
कक्षा तीन का छात्र
चौथी में चढ़ जाये
कितना विस्मय है कि हम, 'राष्ट्र-निर्माता'
निर्माण का स्वाद भी नहीं जान पाये

—सुरेश पारीक 'शशिकर'

यूँ मत बुनो

ग्ररे सुनो।
झरे हुए फूलों को
यूँ मत चुनो।।
झरे हुए फूल
मरे हुए फूल हैं।
तुम उन्हें चुन रहे
यही तुम्हारी भूल है
जो कुछ भी सीखा है।
उसे उतारो जीवन में
ग्रौर गुनो—ग्ररे सुनो.......

गिनादो मुझे
ग्र'गुलियों के पोरों पर
मेरे किये, ग्रन किये।
जिससे मिल जाये थोड़ा बहुत।
सांपों की बस्ती में
सपेरे को ग्राराम।।
होने वाला नहीं टलता
जरा बैठो
जिन्दगी को रुई की तरह
यूँ मत धुनो। ग्ररे सुनो...........

मुझसे कोई प्रश्न
यहाँ मत करो।

यदि कर लिया है तो गैर
अब उत्तर पाने की प्रतीक्षा
मत करो ॥
मैं केवल उन्ही प्रश्नों के
उत्तर देता हूँ
जिनका उत्तर मौन होता है
जो कहना है साफ़ साफ़ कहो
मन में वैमनस्य के जाल
यूँ मत बुनो............अरे सुनो.........

हाँ ! मेरा अपराध यही है !

शब्दों की नसबंदी मैंने, युग के कहने पर न कराई ।
हाँ मेरा अपराध यही है, बस मेरा अपराध यही है ।।

(१)

मेरा मन यायावर जैसे
जिधर जो किया उधर चल दिया ।
बिना पाठ्य क्रम के ही मैंने,
जो चाहा सो पाठ पढ़ लिया ।।
कुर्सी के कोरे कागज पर, मैंने लिखी नहीं भर पाई ।
हाँ मेरा अपराध यही है, बस मेरा अपराध यही है ।।

(२)

मैं कनेर के किसी कुसुम को,
पाटल की संज्ञा दे न सका ।
सागर को यह बात चुभ गई,
मैं न कभी खैरात ले सका ।।
चाबुक की चौखट पर मैंने, अपनी गर्दन नहीं झुकाई.
हाँ मेरा अपराध यही है, बस मेरा अपराध यही है ।।

(३)

मैं विज्ञापन नहीं बन सका,
व्यंग चित्र बन रहा चिढ़ाता ।
खुद ही लड़ता रहा मुकदमा,
और फैसला स्वयं सुनाता ।।
मैंने कभी किसी अफसर, जन्म गाँठ पर दी न बधाई ।
हाँ मेरा अपराध यही है, बस मेरा अपराध यही है ।।

बादळ रा ढोल

आंबर में गरणावे
बादळ रा ढोल

वायरियो बिखरावे, कोरी ई धूळ,
खेतां में चुभ जावे, ब्याज रा बंबूळ,
रीतो ई मनड़ो है, रीतो ई तन—
कोई कदे नी माने करियोड़ी भूल,

ऊपर ई रंगत है
भीतर सूं पोल

तावड़ियो कड़के, नीं दीखे छांव,
ऊंळो सब रीतां है, उल्टा ई नांव,
मील रो धुंआ पीतां कट जावे दिन—
फासलै री गेल बधे, सैर और गांव,

कुण भूखो कुण प्यासो
आ कुण ने तोल ?

सिझ्या भी फैलावे सांवळा अंधेरा,
जैर भरी नजरां नित बांटे सवेरा,
आसा रा पंछी तो उड़ता रह जावे—
रात तारा देवे नित सपनें रा डेरा,

मिनखां ने भरमावै
कोरा ई बोल

—ग्रमोलक चन्द जांगिड़ ●

एक नुवो गीत

डावड़्यां
कांई देखो ऊभा ?
गीर द्यो
ग्रेक नुवो गीत
जिणरी सुर लैरयां में
दुखती छाती री पीड़ा
सो जावै
ग्रणचिन्यां ग्रणथाक
ग्रणूता नैणां में
कंवल्यां खिल जावै
भाव मुळकतै पगल्यां
बांध घूघरा
सत रै डोरा सूं
हरकारां रै हाकै
जय रो निरत करावै ।

•

—अमोलक चन्द जांगिड़ ●

एक नुवो गीत

डावड़्यां
कांई देखो ऊभा ?
गीर द्यो
अेक नुवो गीत
जिणरी सुर लैरयां में
दुखती छाती री पीड़ा
सो जावै
अणचिन्यां अणथाक
अणूता नैणां में
कंवल्यां खिल जावै
भाव मुळकतै पगल्यां
बांध घूघरा
सत रै डोरा सूं
हुरकारां रै हाकै
जय रो निरत करावै ।

•

—अर्जुनसिंह शेखावत

जुग री माँग नै वगत रौ हेलो

थांरे गनै एक दरियाव । जल है
म्हारे गनै एक थली । तिरस है
गर'जे थे म्हारी तिरस नै
एक घोबो पांणी दे दो तो·······

थारे गनै एक पताल । अनाज है
पर म्हारे गनै दो रोटी भूख है
गर'जे थे । म्हारी भूख नै
एक टेम रो ब्यालू दे दो तो ····

थारे गनै एक गावो । गावो है
पर म्हारे गनै एक नांगी देह
गर'जे थे । म्हारे तन नै
दो गज कापड़ो दे दो तो ·· ····

थारे गनै एक धरती । घर है
पर म्हारे गनै एक बावरा जिंदगी
गर'जे थे । म्हारी जिंदगी नै
एक पावडो जगो दे दो तो ·······

तो थे म्हारी जिंदगी नै राम मतकोसा
पण सुणो ! म्हे थे नी रे'णकियो
नीं थानै भी नी रैवण द्यू ला । याद राखजो
ओ वगत रो हेलो है
जुग री माँग है
जमानो पलटो खावै है ।

•

—इन्दर आउवा

जीवण रा चितराम फूटरा कोर तू

जीवण रा चितराम फूटरा कोर तू,
जीवण रा चितराम सांतरा कोर तू,
घिन री कालख पोत हियो मत कालो कर,
मन रो मीठों इमरतड़ो मत आलो कर,
भेद भाव री भीता चिणणी छोड़ दे,
जात पांत रा बांदा ढूंढा तोड़ दे,
मेंणत री बीरा मत छोड़ो डोर तू,
जीवण रा चितराम फूटरा कोर तू।
आज वगत बढ़वा रो आगे बढ़तो जा
देश देवरे नुवी मूरतां गढ़तो जा
भूखां अर नागा रे ताण सहारो बण
जुलम ओम री आंख्यां रो तू तारो बण
हेत प्रीत स्यू भेल सिट्टा मोर तू,
जीवण रा चितराम फूटरा कोर तू।
अंधकार स्यू जीत कदे नी हारे है
झूठ कपट ने कद सच्चाई धारे है
कांपे बेईमान देख ईमान ने
नमन करे भगवान खरा इन्सान ने
थे सूरजड़ा तपतो रे थारो ठौर तू,
जीवण रा चितराम फूटरा कोर तू।

—करणीदान बारहठ ●

इन्जैक्शन

ओ डाकटर,
म्हारै इसो इन्जैक्सन लगा
के भूख न लागै ।
डाक्टर बोल्यो—
वो डाकटर तो ऊपरलै कमरै में
रैवै है,
बठै पूँचवै में फीस तो कोनी लागै
पण कीं टेम लागै है ।

जीनगाणी और मौत

ग्रे जिनगाणी री गाड़ी,
कठै इ पग राखण नै जगां कोनी
तेरै अठै
ईंस्यूं तो मौत आछी
जठै पग पसार र तो
सोज्या है आदमी ।

—गिरधारी सिंह राजावत ●

मंजिल ओज्यूं आंतरै

मारग तो मिलगो पण
मंजिल ग्रोज्यूं ग्रांतरै !

थक मत जाज्यो, थम मत जाज्यो,
वन बागां में रम मत जाज्यो,
ग्राडा-ग्रवळा मारग ग्रासी
चलतां-चलतां गम मत जाज्यो

मारग तो मिलगो पण
मंजिल ग्रोज्यूं ग्रांतरै ।

देख रूंख री गैरी छायां,
बैठ मति जाज्यो रे भायां,
नेछा सूं बैठांला ग्रापां
घणी सांतरी मंजिल ग्रायां

मारग तो मिलगो पण
मंजिल ग्रोज्यूं ग्रांतरै ।

बाधावां रा वाड़ वांठका
मारग सगळा करो सांतरा
डूंगर फोड़ नद्यां नै फोड़ो
मारग करल्यो साव पादरा

मारग तो मिलगो पण
मंजिल ग्रोज्यूं ग्रांतरै ।

मंजिल पायां ही सुख पास्यां,
धाप-धाप नै रोटी खास्यां,
कोई न हुसी दुखी-दरिद्री,
सगळा सागै मोज मनास्यां ।

वीर विरदावली

१. ए सरित ! साजन आविया, रण जोत्यां निज गोर ।
आंबा कूको कोयल्यां, बागां नाच्या मोर ।।

२. पिव पोढ्या रण-खेत मां, आंजस सूं गरमाय ।
ए उमगघोडी बादली !, छाया करजे जाय ।।

३. दूध जणां दन उजलो, पूत लड़े रण खेत ।
माग जणा दन उजलो, कंथ कटे भू-हेत ।।

४. घम-घम धमके गूडलो, गुण मालो उण हाथ ।।
जिणरा साहस देश हित, हरख कटावे माथ ।

५. बाम-गणा में गेंद सूं, गण-गण खेल्या खेल ।
वैरयां बम्म पुड़ाय जो, रण-भूमि में धेल ।।

६. गोरी ऊभो बारणे, पंकूं मांग पुराय ।
मन चोग्या बांधे मला, रण-जोरया कद आय ।।

७. सूरज ऊगो ए सखी, कडूं किरण पसार ।
घोर गुराऊं मांडणा, रण जोरयो भरतार ।।

—मीठालाल खत्री ●

म्हूं अचेतन कोनो !

म्हारै आठै
सारा ई अेक है
म्हूं आ नी देखूं
कै ओ कपड़ो धनिया सेठ रो है
अर आ मांगिया भांबी रो
अर ओ भी नीं देखूं
कै ओ कपड़ो टेरिलीन रो है
कै खद्दर रो
म्हारै आठै तो
सारा ई अेक है
कुण राजा भोज अर
कुण गंगलो तेली !
म्हैं तो अेक ई रफ्तार सूं
अर बगैर भेदभाव सूं
सारा ई कपड़ा सिव देवूं
म्है सूई हूं
लोग म्हनै अचेतन समझै
पण आ बात सफाई झूठी है
म्हैं अचेतन कोनी !
अगर चेतन नी हुवती
तो म्हारै हिरदै मांय
ऊंच-नीच भितरता री भींत जागती बोलर !

—मुरलीधर शर्मा 'विमल'

जदै अ'र अबै

पैलड़ी दियाळी
मनींजी ही
जणा
राम बनवास सूं
पाछो आयो हो
लोगां,
राम रतन धन पायो हो
अ'र अबै
दियाळी मनींजै है
राम रै निरवासण मायं
रावण रै निरवासण मायं

कविता

जीणे-रो अर्थ यदि बलणो जलणो है—
तो, मोमवत्ती वरण-अगरवत्ती ज्यूं
होमीज-जा ।
परण, परवाने ज्यूं अनमोल जीवरा
परचामत उडा-जोवतो चामड़ी बल्यां
मुरडान्द आवे-जी मचलावे
मूंज बले-परण बट रे जावे—
जनम जात सुभाव स्यूं लार नईं छूटे
चिमगादड़ ज्यूं उलटो लट्क्यां किसी लार छूटे
मिनख जरण मिलो है—पा-पा-चालणो सीख
थड़ी करो-गोदी मत तको
आंगली पकड़-अ-र कितीक दूर चालणो चावो
ऊंचले धोरे-परले पार-ध्यान राख
धोरां री गोरी धूल नरम है—निचानो
घिसकेला-पगां हेटली धूल घिसकतो
माथे ने आ सके ।

—मुरलीधर शर्मा 'विमल' ●

जदै अ'र अबै

पैलड़ी दियाळी
मनींजी ही
जणा
राम बनवास सूं
पाछो आयो हो
लोगां,
राम रतन धन पायो हो
अ'र अबै
दियाळी मनींजै है
राम रै निरवासण मायं
रावण रै निरवासण मायं

●

—मोहम्मद सदीक ●

कविता

जीणें-रो अर्थ यदि बलणो जलणो है—
तो, मोमबत्ती बण-अगरबत्ती ज्यूं
होमीज-जा ।
पण, परवाने ज्यूं अनमोल जीवरा
परवामत उडा-जोवतो चामडो बल्या
मुरड़ान्द आवे-जी मचलावे
मूंज बले-पण वट रे जावे—
जनम जात सुभाव स्यूं लार नई छूटे
चिमगादड़ ज्यूं उलटो लट्क्यां किसी लार छूटे
मिनख जण मिलो है—पा-पा-चालणो सीख
थड़ी करो-गोदी मत तको
आंगली पकड़-अ-र कितीक दूर चालणो चावो
ऊंचले धोरे-परले पार-ध्यान राख
धोरां री गोरी धूल नरम है—निचानो
घिसकेला-पगां हेटली धूल घिसकतो
माथे ने आ सके ।

●

सीख

एक भयाणी बस दुर्घटना
पचास मर्‌या-तीस घायल
ड्राइवर सूं पूछ्यो
बस उळटबारो कारण
बोल्यो
एक बूढ़ै मिनख री सीख है—
'क' बारै नी
मायरै मांय जोवो।'
•

एक सिझ्या

कबूतर आगै-आगै
बिल्ली लारै-लारै
टूटाळी पर सुस्ता'र
पाणी में उडग्या—
भारत्‌ मेर टूटगो—
कूंपणा सूं काजट

•

अल्हड़ जवानी सपना में खोगी

भाग फाट्या पैली
घट्या री घमड़ घमड़ र लार
गावां री गोरयां रा गला सूं
फुटता मीठा सुर–
बिलोवणा रा घमड कार
टणमण करती टोकरयां री
न्यारी न्यारी भणकार बीच
गांव रो करसाणी जवान
खेतां आडो भाग्यो
दन री उगाल र साथ ही धरती री पूजा में लाग्यो।
पसीना रा मोती सो बहग्या
पण मन रा अरमान धर ही रहग्या,
जिमूं ही नजर जा अटकी ऊं गैला पर
जठी सूं जोड़ायत कलेवो लेर आती नजर आई,
पसोना में भीग्या यौवन री बेल सरसाई।
दो घड़ी बेड्यां सूं हुई उमग्योड़ा मनां री बात
घूंघट में घुस्यां नैनां सूं मुलाकात
होठां ही होठां में हिवड़ा री बात होगी
पर–अल्हड़ जवानी प्रीत रा सपना में खोगी।

●

—गिरराज थंगाणी

माळीपांना रा भैंरूंजी

माठै रे माळी मनाणें सूं
भैंरूजी कोनी बणें
सरपां नैं दूध पावणें सूं
जैं'र कोनी घणें
कुरेरी पूंछ रे प्लास्टर
बंधाणें सूं सीधी कोन लणें
सातां रा देव वातां सूं कद मनैं
चोर-चोरी सूं गयो
हेरा-फेरी सू कद टळै
अण नेकी आळा अणसरतीरा
नेकी रे ओहदे माथैं बैठ'र
नेकी रो डंको कोनी बजा सकैं
अग्यानी-ग्यानी नैं कद लजा सकैं
पईसो कंजूस कनैं घणो हुवैं
पण प्रतिस्ठा रो पाणी कद चड़ा सके
बोल मूंढ़ सूं तोल'र निकालणो चोखो लागैं
सुगन आळांरी भूख भाजैं
पण अंगूठा छाप अण भणिया
छापैरा संपादक कद लाजैं
तवैं माथली थारी, अर
चूलैं माथली म्हारी
मतलब री मनवार, अर
सवदां सूं सिट्टो सेरण आळारी
भर मार माथैं
कद छापे खाने री
काली स्याही लागैं—

उजास की बेर

भाग फाटगी
एक लाँबी काली रात
अँध्यारा का चीरड़ा न
बोर, समेट अर भाग गी
बरसाँ पाछ
दीखबा लागी छ'—
सूधी गेल,
पगडण्ड्याँ, गडाराँ
फेरुँ छूट चाली छ,
मलँ पोन की गंध
सीरी अर मंदी
मूँडो उकेरबा लाग्यो छ
मीठी राग
पगाँ म' जाग्यो छ'
चालबा को छाव
अर
मनड़ा क' लाग ग्या छ' ?
उजास की बेर म'

नगर री जिनगानी : तीन चितराम

दिनुगै
च्यार वजे सूं रात री दस बज्यां तांई
दफ्तर री आपाधापी मांय 'बिजी'
उडीकै अेक दीतवार नैं हियो ।
अर दीतवार नैं–
"अै थारा बापूजी है" कह'र
घर हाळी
टाबरां नैं म्हारो परिचै दियो ।

●

सिर सूं ऊंचो फायलां रो ढीग,
सां'य रो चढ्योड़ो तोरो,
सुरसा सी मंगाई,
गिणती रो दरमायो
अर कन्टरोल रै दाणारो लांबो 'क्यू
मां म्हारथियां रै विचाळै
आज रो अभमन्यू
बीरता सूं लड़ियो
पण भेद नीं पायो चकरव्यू ।

●

म्हैं बोल्यो
टाबरिया री मां सूं

आज री रात
वै बीती बातां याद करस्यां
कितरा दिन बीत्या
सुख-दुख री कह्'यां-सुण्यां
अे कर फेरूं सपनां मांय
रुपहलो रंग भरस्यां
(चोर चोरी सूं गयो हेरा फेरी सूं नी गयो)
सारलै कमरै कमरै सूं
बोल्यो घरधणी-
"रंग भरो, पण बत्ती बुझा'र
मीटर चालै है।"

सरणाटो

सुणै सरणाटो
आखी रात कोई !
हेठै धरती
ऊपर आभो
पण नींद नीं आवै
कळपै हिवड़ो
टूटै तनड़ो
पीड़ कुण मिटावै
फोरै पसवाड़ो
आखी रात कोई !
सांसां चालै
मजलां दीखै
डगमगावै पग
म्हारा इरादा
खरीदणा चावै
छळ छंद सूं जग
भुगतै नरकवाड़ो
आखी रात कोई !
सुणै सरणाटो
आखी रात कोई !

—ज्ञानसिंह चौहान

साँझ

सांझ रो सिणगार करणियो
हो लैंसै क आ
कंकू री टीकियां दै
मांग में सिंदूर भर,
उण नै गिलगिलाय
अलप झलप व्है ग्यो।
सांझ,
आवै रो झेनो लै,
ठोडी हाथ मायं मेल
उण रा
सोवणा
कंकू वरणा
पग मांडणां देखती री
उणां रे मिटतांई
मणमणी व्हैगी।

बलवीरसिंह करुण	रा० मा० वि., हरसौली
ब्रजेन्द्रसिंह भदौरिया	रा० मा० विद्यालय आवाँ (टोंक)
ब्रजभूषण भट्ट	रा० उ० मा० वि० जवाजा (अजमेर)
भगवती प्रसाद गौतम	रा० उ० मा० वि० भवानीमंडी
भँवरसिंह सहवाल	रा० शि० प्रशि० वि० मसूदा (अजमेर)
भागीरथ भार्गव	89 आर्यनगर, अलवर
मगरचंद्र दवे	रा०उ० प्राथमिक वि० चितलवाना(जालौर)
मणि बावरा	रा० उ० मा० विद्यालय बाँसवाड़ा
मदनलाल याज्ञिक	पीरामल उ०माध्यमिक वि०बगड़ (झुंझुनूं)
मनमोहन झा	उच्च मा० वि० नागरवाड़ा (बांसवाड़ा)
महावीर 'जोशी'	रा० मा० वि० टीबाबसई (झुंझुनूं)
मीठालाल खत्री	रा० प्रा० विद्यालय कोतवाली, जालौर
मुखराम माकड	रा०मा० विद्यालय, रावतसर (श्रीगंगानगर)
मोड़सिंह मृगेन्द्र	थोरिया, पो० घाटा,वाया चारभुजा (उदयपुर)
मोहम्मद सदीक	रा० शि० प्र० महिला विद्यालय, बीकानेर
रमेशकुमार शील	रा० उ० प्रा० वि० वंदरारैंढा (भरतपुर)
रमेश भारद्वाज	टोडरमल मोहल्ला नसीराबाद
रमेश शर्मा एकाकी	विद्या भवन स्कूल उदयपुर
रामस्वरूप परेश	रा० उ० मा० वि० बगड़ (झुंझुनूं)
लक्ष्मीनारायण उपाध्याय 'उपमन्यू'	रा० उ० मा० वि० हिन्डोन
ललिता प्रसाद पाठक	रा० उ० प्रा० वि० रवाजना चौड़ (सवाई माधोपुर)
लक्ष्मी पुरोहित	रा० मा० बालिका वि० बेगूं (चित्तौड़गढ़)
वासुदेव चतुर्वेदी	पोस्ट ऑफिस के पास छोटी सादड़ी
वीणा गुप्ता	श्रीराम विद्यालय, उद्योगपुरी, कोटा
विश्वम्भर प्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी'	विवेक कुटीर, सुजानगढ़
श्रीकांत कुलश्रेष्ठ	सेंट पाल्स स्कूल माला रोड, कोटा जंक्शन
श्रीनन्दन चतुर्वेदी	रा० उ० मा० वि० बारां (कोटा)
श्याम मिश्र	उत्तरादा बाजार, सुजानगढ़
श्याम त्रिवेदी	रा० उ० मा० वि० मेड़ता सिटी
साँवर दइया	रा० बाबू उ० प्रा० वि० बीकानेर
हनुमान प्रसाद बोहरा	पालकों का मोहल्ला पुरानी टोंक, टोंक